.. Dnyaneshvari or Bhavarthadipika Chapter 12 ..

॥ ज्ञानेश्वरी भावार्थदीपिका अध्याय १२ ॥

॥ ॐ श्री परमात्मने नमः ॥
अध्याय बारावा ।
भक्तियोगः ।

जय जय वो शुद्धे। उदारे प्रसिद्धे। अनवरत आनंदे। वर्षतिये ॥ १॥
विषयव्याळें मिठी। दिधलिया नुठी ताठी। ते तुझिये गुरुकृपादृष्टी। निर्विष होय ॥ २॥
तरी कवणातें तापु पोळी। कैसेनि वो शोकु जाळी। जरी प्रसादरसकल्लोळीं। पुरें येसि तूं ॥ ३॥
योगसुखाचे सोहळे। सेवकां तुझेनि स्नेहाळे। सोऽहंसिद्धीचे लळे। पाळिसी तूं ॥ ४॥
आधारशक्तीचिया अंकीं। वाढविसी कौतुकीं। हृदयाकाशपल्लकीं। परीये देसी निजे ॥ ५॥
प्रत्यक्ज्योतीची वोवाळणी। करिसी मनपवनाचीं खेळणीं। आत्मसुखाची बाळलेणीं। लेवविसी ॥ ६॥
सतरावियेचें स्तन्य देसी। अनुहताचा हल्लरू गासी। समाधिबोधें निजविसी। बुझाऊनि ॥ ७॥
म्हणौनि साधकां तूं माउली। पिके सारस्वत तुझिया पाउलीं। या कारणें मी साउली। न संडीं तुझी ॥ ८॥
अहो सद्गुरुचिये कृपादृष्टी। तुझें कारुण्य जयातें अधिष्ठी। तो सकलविद्यांचिये सृष्टीं। धात्रा होय ॥ ९॥
म्हणौनि अंबे श्रीमंते। निजजनकल्पलते। आज्ञापीं मातें। ग्रंथनिरूपणीं ॥ १०॥
नवरसीं भरवीं सागरु। करवीं उचित रत्नांचे आगरु। भावार्थाचे गिरिवरु। निफजवीं माये ॥ ११॥
साहित्यसोनियाचिया खाणी। उघडवीं देशियेचिया क्षोणीं। विवेकवल्लीची लावणी। हों देईं सैंघ ॥ १२॥
संवादफळनिधानें। प्रमेयाचीं उद्यानें। लावीं म्हणे गहनें। निरंतर ॥ १३॥
पाखांडाचे दरकुटे। मोडीं वाग्वाद अव्हांटे। कुतर्कांचीं दुष्टें। सावजें फेडीं ॥ १४॥
श्रीकृष्णगुणीं मातें। सर्वत्र करीं वो सरतें। राणिवे बैसवी श्रोते। श्रवणाचिये ॥ १५॥
ये मऱ्हाठियेचिया नगरीं। ब्रह्मविद्येचा सुकाळु करीं। घेणें देणें सुखचिवरी। हों देईं या जगा ॥ १६॥
तूं आपुलेनि स्नेहपल्लवें। मातें पांघुरविशील सदैवें। तरी आतांचि हें आघवें। निर्मीन माये ॥ १७॥
इये विनवणीयेसाठीं। अवलोकिलें गुरु कृपादृष्टी। म्हणे गीतार्थेंसी उठी। न बोलें बहु ॥ १८॥
तेथ जी जी महाप्रसादु। म्हणौनि साविया जाहला आनन्दु। आतां निरोपीन प्रबंधु। अवधान दीजे ॥ १९॥

अर्जुन उवाच ।
एवं सतत युक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥ १॥

तरी सकलवीराधिराजु। जो सोमवंशीं विजयध्वजु। तो बोलता जाहला आत्मजु। पंडुनृपाचा ॥ २०॥
कृष्णातें म्हणे अवधारिलें। आपण विश्वरूप मज दाविलें। तें नवल म्हणौनि बिहालें। चित्त माझें ॥ २१॥
आणि इये कृष्णमूर्तीची सवे। यालागीं सोय धरिली जीवें। तंव नको म्हणोनि देवें। वारिलें मातें ॥ २२॥
तरी व्यक्त आणि अव्यक्त। हें तूंचि एक निभ्रांत। भक्ती पाविजे व्यक्त। अव्यक्त योगें ॥ २३॥
या दोनी जी वाटा। तूंतें पावावया वैकुंठा। व्यक्ताव्यक्त दारवंठां। रिगिजे येथ ॥ २४॥

पैं जे वानी श्यातुका। तेचि वेगळिये वाला येका। म्हणौनि एकदेशिया व्यापका। सरिसा पाडू ॥ २५॥
अमृताचिया सागरीं। जे लाभे सामर्थ्याची थोरी। तेचि दे अमृतलहरी। चुळीं घेतलेया ॥ २६॥
हे कीर माझ्या चित्तीं। प्रतीति आथि जी निरुती। परि पुसणें योगपती। तें याचिलागीं ॥ २७॥
जें देवा तुम्हीं नावेक। अंगिकारिलें व्यापक। तें साच कीं कवतिक। हें जाणावया ॥ २८॥
तरी तुजलागीं कर्म। तूंचि जयांचें परम। भक्तीसी मनोधर्म। विकोनि घातला ॥ २९॥
इत्यादि सर्वीं परीं। जे भक्त तूंतें श्रीहरी। बांधोनियां जिव्हारीं। उपासिती ॥ ३०॥
आणि जें प्रणवापैलीकडे। वैखरीयेसी जें कानडें। कायिसयाहि सांगडें। नव्हेचि जें वस्तु ॥ ३१॥
तें अक्षर जी अव्यक्त। निर्देश देशरहित। सोऽहंभावें उपासित। ज्ञानिये जे ॥ ३२॥
तयां आणि जी भक्तां। येरयेरांमाजी अनंता। कवणें योगु तत्त्वतां। जाणितला सांगा ॥ ३३॥
इया किरीटीचिया बोला। तो जगद्‌बंधु संतोषला। म्हणे हो प्रश्नु भला। जाणसी करूं ॥ ३४॥

श्री भगवानुवाच ।
मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥ २॥

तरी अस्तुगिरीचियां उपकंठीं। रिगालिया रविबिंबापाठीं। रश्मी जैसे किरीटी। संचरती ॥ ३५॥
कां वर्षाकाळीं सरिता। जैसी चढों लागें पांडुसुता। तैसी नीच नवी भजतां। श्रद्धा दिसे ॥ ३६॥
परी ठाकिलियाहि सागरु। जैसा मागीलही यावा अनिवारु। तिये गंगेचिये ऐसा पडिभरु। प्रेमभावा ॥ ३७॥
तैसें सर्वेंद्रियांसहित। मजमाजीं सूनि चित्त। जे रात्रिदिवस न म्हणत। उपासिती ॥ ३८॥
इयापरी जे भक्त। आपणपें मज देत। तेचि मी योगयुक्त। परम मानीं ॥ ३९॥

ये त्वक्षर्मनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवं ॥ ३॥

आणि येर तेही पांडवा। जे आरूढोनि सोऽहंभावा। झोंबती निरवयवा। अक्षरासी ॥ ४०॥
मनाची नखी न लगे। जेथ बुद्धीची दृष्टी न रिगे। ते इंद्रियां कीर जोगें। कायि होईल ? ॥ ४१॥
परी ध्यानाही कुवाडें। म्हणौनि एके ठायीं न संपडे। व्यक्तीसि माजिवडें। कवणेही नोहे ॥ ४२॥
जया सर्वत्र सर्वपणें। सर्वांही काळीं असणें। जें पावूनि चिंतवणें। हिंपुटी जाहलें ॥ ४३॥
जें होय ना नोहे। जें नाहीं ना आहे। ऐसें म्हणौनि उपाये। उपजतीचि ना ॥ ४४॥
जें चळे ना ढळे। सरे ना मैळे। तें आपुलेनीचि बळें। आंगविलें जिहीं ॥ ४५॥

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥ ४॥

पैं वैराग्यमहापावकें। जाळूनि विषयांचीं कटकें। अधपलीं तवकें। इंद्रियें धरिलीं ॥ ४६॥
मग संयमाची धाटी। सूनि मुरडिलीं उफराटीं। इंद्रियें कोंडिलीं कपाटीं। हृदयाचिया ॥ ४७॥

अपानींचिया कवाडा। लावोनि आसनमुद्रा सुहाडा। मूळबंधाचा हुडा। पन्नासिला ॥ ४८॥
आशेचे लाग तोडिले। अधैर्याचे कडे झाडिले। निद्रेचें शोधिलें। काळवखें ॥ ४९॥
वज्राग्नीचिया ज्वाळीं। करूनि सप्तधातूंची होळी। व्याधींच्या सिसाळीं। पूजिलीं यंत्रें ॥ ५०॥
मग कुंडलिनियेचा टेंभा। आधारीं केला उभा। तया चोजवलें प्रभा। निमथावरी ॥ ५१॥
नवद्वारांचिया चौचकीं। बाणूनि संयतीची आडवंकी। उघडिली खिडकी। ककारांतींची ॥ ५२॥
प्राणशक्तिचामुंडे। प्रहारूनि संकल्पमेंढे। मनोमहिषाचेनि मुंडें। दिधलीं बळी ॥ ५३॥
चंद्रसूर्यां बुझावणी। करूनि अनुहताची सुडावणी। सतरावियेचें पाणी। जिंतिलें वेगीं ॥ ५४॥
मग मध्यमा मध्य विवरें। तेणें कोरिवें दादरें। ठाकिलें चवरें। ब्रह्मरंध्र ॥ ५५॥
वरी मकारांत सोपान। ते सांडोनिया गहन। काखे सूनियां गगन। भरले ब्रह्मीं ॥ ५६॥
ऐसे जे समबुद्धी। गिळावया सोऽहंसिद्धी। आंगविताती निरवधी। योगदुर्गें ॥ ५७॥
आपुलिया साटोवाटी। शून्य घेती उठाउठीं। तेही मातेंचि किरीटी। पावती गा ॥ ५८॥
वांचूनि योगचेनि बळें। अधिक कांहीं मिळे। ऐसें नाहीं आगळें। कष्टचि तया ॥ ५९॥

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ ५॥

जिहीं सकळ भूतांचिया हितीं। निरालंबीं अव्यक्तीं। पसरलिया आसक्ती। भक्तीवीण ॥ ६०॥
तयां महेन्द्रादि पदें। करिताति वाटवधें। आणि ऋद्धिसिद्धींचीं द्वंद्वं। पाडोनि ठाती ॥ ६१॥
कामक्रोधांचे विलग। उठावती अनेग। आणि शून्येंसीं आंग। झुंजवावें कीं ॥ ६२॥
ताहानें ताहानचि पियावी। भुकेलिया भूकचि खावी। अहोरात्र वावीं। मवावा वारा ॥ ६३॥
उनी दिहाचें पहुडणें। निरोधाचें वेल्हावणें। झाडासि साजणें। चाळावें गा ॥ ६४॥
शीत वेढावें। उष्ण पांघुरावें। वृष्टीचिया असावें। घरांआंतु ॥ ६५॥
किंबहुना पांडवा। हा अग्निप्रवेशु नीच नवा। भातारेंवीण करावा। तो हा योगु ॥ ६६॥
एथ स्वामीचें काज। ना वापिकें व्याज। परी मरणेंसीं झुंज। नीच नवें ॥ ६७॥
ऐसें मृत्यूहूनि तीख। कां घोंटे कढत विख। डोंगर गिळितां मुख। न फाटे काई ? ॥ ६८॥
म्हणौनि योगाचियां वाटा। जे निगाले गा सुभटा। तयां दुःखाचाचि शेलवांटा। भागा आला ॥ ६९॥
पाहें पां लोहाचे चणे। जैं बोचरिया पडती खाणें। तैं पोट भरणें कीं प्राणें। शुद्धी म्हणों ॥ ७०॥
म्हणौनि समुद्र बाहीं। तरणे आथि केंही। कां गगनामाजीं पाई। खोलिजतु असें ? ॥ ७१॥
वळघलिया रणाची थाटी। आंगीं न लागतां कांठी। सूर्याची पाउटी। कां होय गा ॥ ७२॥
यालागीं पांगुळा हेवा। नव्हे वायूसि पांडवा। तेवीं देहवंता जीवां। अव्यक्तीं गति ॥ ७३॥
ऐसाही जरी धिंवसा। बांधोनियां आकाशा। झोंबती तरी क्लेशा। पात्र होती ॥ ७४॥
म्हणौनि येर ते पार्था। नेणतीचि हे व्यथा। जे कां भक्तिपंथा। वोटंगले ॥ ७५॥

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ ६॥

कर्मेंद्रियें सुखें। करिती कर्में अशेखें। जियें कां वर्णविशेखें। भागा आलीं ॥ ७६॥
विधीतें पाळित। निषेधातें गाळित। मज देऊनि जाळित। कर्मफळें ॥ ७७॥
ययापरी पाहीं। अर्जुना माझें ठाईं। संन्यासूनि नाहीं। करिती कर्में ॥ ७८॥
आणीकही जे जे सर्व। कायिक वाचिक मानसिक भाव। तयां मीवांचूनि धांव। आनौती नाहीं ॥ ७९॥
ऐसे जे मत्पर। उपासिती निरंतर। ध्यानमिषें घर। माझें झालें ॥ ८०॥
जयांचिये आवडी। केली मजशीं कुळवाडी। भोग मोक्ष बापुडीं। त्यजिलीं कुळें ॥ ८१॥
ऐसे अनन्ययोगें। विकले जीवें मनें आंगें। तयांचे कायि एक सांगें। जें सर्व मी करीं ॥ ८२॥

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ ७॥

किंबहुना धनुर्धरा। जो मातेचिया ये उदरा। तो मातेचा सोयरा। केतुला पां ॥ ८३॥
तेवीं मी तयां। जैसे असती तैसियां। कळिकाळ नोकोनियां। घेतला पट्टा ॥ ८४॥
एऱ्हवीं तरी माझियां भक्तां। आणि संसाराची चिंता। काय समर्थाची कांता। कोरान्न मागे ॥ ८५॥
तैसे ते माझें। कलत्र हें जाणिजे। कायिसेनिही न लजें। तयांचेनि मी ॥ ८६॥
जन्ममृत्यूचिया लाटीं। झळंबती इया सृष्टी। तें देखोनियां पोटीं। ऐसें जाहलें ॥ ८७॥
भवसिंधूचेनि माजें। कवणासि धाकु नुपजे। तेथ जरी कीं माझे। बिहिती हन ॥ ८८॥
म्हणौनि गा पांडवा। मूर्तीचा मेळावा। करूनि त्यांचिया गांवा। धांवतु आलों ॥ ८९॥
नामाचिया सहस्रवरी। नावा इया अवधारीं। सजूनियां संसारीं। तारू जाहलों ॥ ९०॥
सडे जे देखिले। ते ध्यानकासे लाविले। परीग्रहीं घातले। तरियावरी ॥ ९१॥
प्रेमाची पेटी। बांधली एकाचिया पोटीं। मग आणिले तटीं। सायुज्याचिया ॥ ९२॥
परी भक्तांचेनि नांवें। चतुष्पदादि आघवे। वैकुंठींचिये राणिवे। योग्य केले ॥ ९३॥
म्हणौनि गा भक्तां। नाहीं एकही चिंता। तयांतें समुद्धर्ता। आथि मी सदा ॥ ९४॥
आणि जेव्हांचि कां भक्तीं। दीधली आपुली चित्तवृत्ती। तेव्हांचि मज सूति। त्यांचिये नाटीं ॥ ९५॥
याकारणें गा भक्तराया। हा मंत्र तुवां धनंजया। शिकिजे जे यया। मार्गा भजिजे ॥ ९६॥

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत उर्ध्वं न संशयः ॥ ८॥

अगा मानस हें एक। माझ्या स्वरूपीं वृत्तिक। करूनि घालीं निष्टंक। बुद्धि निश्चयेंसीं ॥ ९७॥
इयें दोनीं सरिसीं। मजमाजीं प्रेमेसीं। रिगालीं तरी पावसी। मातें तूं गा ॥ ९८॥
जे मन बुद्धि इहीं। घर केलें माझ्यां ठायीं। तरी सांगें मग काइ। मी तू ऐसें उरे ? ॥ ९९॥
म्हणौनि दीप पालवे। सवेंचि तेज मालवे। कां रविबिंबासवें। प्रकाशु जाय ॥ १००॥
उचललेया प्राणासरिसीं। इंद्रियेंही निगती जैसीं। तैसा मनोबुद्धिपाशीं। अहंकारु ये ॥ १०१॥
म्हणौनि माझिया स्वरूपीं। मनबुद्धि इयें निक्षेपीं। येतुलेनि सर्वव्यापी। मीचि होसी ॥ १०२॥
यया बोला कांहीं। अनारिसें नाहीं। आपली आण पाहीं। वाहतु असें गा ॥ १०३॥

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनन्जय ॥ ९॥

अथवा हें चित्त। मनबुद्धिसहित। माझ्यां हातीं अचुंबित। न शकसी देवों ॥ १०४॥
तरी गा ऐसें करीं। यया आठां पाहारांमाझारीं। मोटकें निमिषभरी। देतु जाय ॥ १०५॥
मग जें जें कां निमिख। देखेल माझें सुख। तेतुलें अरोचक। विषयीं घेईल ॥ १०६॥
जैसा शरत्कालु रिगे। आणि सरिता वोहटूं लागे। तैसें चित्त काढेल वेगें। प्रपंचौनि ॥ १०७॥
मग पुनवेहूनि जैसें। शशिबिंब दिसेंदिसें। हारपत अंवसे। नाहींचि होय ॥ १०८॥
तैसें भोगाआंतूनि निगतां। चित्त मजमाजीं रिगतां। हळूहळू पंडुसुता। मीचि होईल ॥ १०९॥
अगा अभ्यासयोगु म्हणिजे। तो हा एकु जाणिजे। येणें कांहीं न निपजे। ऐसें नाहीं ॥ ११०॥
पैं अभ्यासाचेनि बळें। एकां गति अंतराळे। व्याघ्र सर्प प्रांजळे। केले एकीं ॥ १११॥
विष कीं आहारीं पडे। समुद्रीं पायवाट जोडे। एकीं वाग्ब्रह्म थोकडें। अभ्यासें केलें ॥ ११२॥
म्हणौनि अभ्यासासी कांहीं। सर्वथा दुष्कर नाहीं। यालागी माझ्या ठायीं। अभ्यासें मीळ ॥ ११३॥

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १०॥

कां अभ्यासाही लागीं। कसु नाहीं तुझिया अंगीं। तरी आहासी जया भागीं। तैसाचि आस ॥ ११४॥
इंद्रियें न कोंडीं। भोगातें न तोडीं। अभिमानु न संडीं। स्वजातीचा ॥ ११५॥
कुळधर्मु चाळीं। विधिनिषेध पाळीं। मग सुखें तुज सरळी। दिधली आहे ॥ ११६॥
परी मनें वाचा देहें। जैसा जो व्यापारु होये। तो मी करीतु आहें। ऐसें न म्हणें ॥ ११७॥
करणें कां न करणें। हें आघवें तोचि जाणे। विश्व चळतसे जेणें। परमात्मेनि ॥ ११८॥
उणयापुरेयाचें कांहीं। उरों नेदी आपुलिया ठायीं। स्वजाती करूनि घेईं। जीवित्व हें ॥ ११९॥
माळियें जेउतें नेलें। तेउतें निवांतचि गेलें। तया पाणिया ऐसें केलें। होआवें गा ॥ १२०॥
म्हणौनि प्रवृत्ति आणि निवृत्ती। इयें वोझीं नेघे मती। अखंड चित्तवृत्ती। माझ्या ठायीं ॥ १२१॥
एऱ्हवीं तरी सुभटा। उजू कां अव्हाटां। रथु काई खटपटा। करितु असे ? ॥ १२२॥
आणि जें जें कर्म निपजे। तें थोडें बहु न म्हणिजे। निवांतचि अर्पिजे। माझ्यां ठायीं ॥ १२३॥
ऐसिया मद्भावना। तनुत्यागीं अर्जुना। तूं सायुज्य सदना। माझिया येसी ॥ १२४॥

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥ ११॥

ना तरी हेंही तूज। नेदवे कर्म मज। तरी तूं गा बुझ। पंडुकुमरा ॥ १२५॥
बुद्धीचिये पाठीं पोटीं। कर्माआदि कां शेवटीं। मातें बांधणें किरीटी। दुवाड जरी ॥ १२६॥
तरी हेंही असो। सांडीं माझा अतिसो। परि संयतिसीं वसो। बुद्धि तुझी ॥ १२७॥

आणि जेणें जेणें वेळें। घडती कर्मै सकळें। तयांचीं तियें फळें। त्यजितु जाय ॥ १२८॥
वृक्ष कां वेली। लोटती फळें आलीं। तैसीं सांडीं निपजलीं। कर्मै सिद्धें ॥ १२९॥
परि मातें मनीं धरावें। कां मजउद्देशें करावें। हें कांहीं नको आघवें। जाऊं दे शून्यीं ॥ १३०॥
खडकीं जैसें वर्षलें। कां आगीमाजीं पेरिलें। कर्म मानी देखिलें। स्वप्न जैसें ॥ १३१॥
अगा आत्मजेच्या विषीं। जीवु जैसा निरभिलाषी। तैसा कर्मीं अशेषीं। निष्कामु होईं ॥ १३२॥
वन्हीची ज्वाळा जैसी। वायां जाय आकाशीं। क्रिया जिरों दे तैसी। शून्यामाजी ॥ १३३॥
अर्जुना हा फलत्यागु। आवडे कीर असलगु। परी योगामाजीं योगु। धुरेचा हा ॥ १३४॥
येणें फलत्यागें सांडे। तें तें कर्म न विरूढे। एकचि वेळे वेळुझाडें। वांझें जैसीं ॥ १३५॥
तैसें येणेंचि शरीरें। शरीरा येणें सरे। किंबहुना येरझारे। चिरा पडे ॥ १३६॥
पैं अभ्यासाचिया पाउटीं। ठाकिजे ज्ञान किरीटी। ज्ञानें येइजे भेटी। ध्यानाचिये ॥ १३७॥
मग ध्यानासि खेंव। देती आघवेचि भाव। तेव्हां कर्मजात सर्व। दूरी ठाके ॥ १३८॥
कर्म जेथ दुरावे। तेथ फलत्यागु संभवे। त्यागास्तव आंगवे। शांति सगळी ॥ १३९॥
म्हणौनि यावया शांति। हाचि अनुक्रमु सुभद्रापती। म्हणौनि अभ्यासुचि प्रस्तुतीं। करणें एथ ॥ १४०॥

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद् ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात् कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिनिरन्तरम् ॥ १२॥

अभ्यासाहूनि गहन। पार्था मग ज्ञान। ज्ञानापासोनि ध्यान। विशेषिजे ॥ १४१॥
मग कर्मफलत्यागु। तो ध्यानापासोनि चांगु। त्यागाहूनि भोगु। शांतिसुखाचा ॥ १४२॥
ऐसिया या वाटा। इहींचि पेणा सुभटा। शांतीचा माजिवटा। ठाकिला जेणें ॥ १४३॥

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ १३॥

जो सर्व भूतांच्या ठायीं। द्वेषांतें नेणेंचि कहीं। आपपरु नाहीं। चैतन्या जैसा ॥ १४४॥
उत्तमातें धरिजे। अधमातें अव्हेरिजे। हें काहींचि नेणिजे। वसुधा जेवीं ॥ १४५॥
कां रायाचें देह चाळूं। रंकातें परौतें गाळूं। हें न म्हणेचि कृपाळू। प्राणु पैं गा ॥ १४६॥
गाईची तृषा हरूं। कां व्याघ्रा विष होऊनि मारूं। ऐसें नेणेंचि गा करूं। तोय जैसें ॥ १४७॥
तैसी आघवियांचि भूतमात्रीं। एकपणें जया मैत्री। कृपेशीं धात्री। आपणचि जो ॥ १४८॥
आणि मी हे भाष नेणें। माझें काहींचि न म्हणे। सुख दुःख जाणणें। नाहीं जया ॥ १४९॥
तेवींचि क्षमेलागीं। पृथ्वीसि पवाडु आंगीं। संतोषा उत्संगीं। दिधलें घर ॥ १५०॥

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १४॥

वार्षियेवीण सागरू। जैसा जळें नित्य निर्भरु। तैसा निरुपचारु। संतोषी जो ॥ १५१॥

वाहूनि आपुली आण। धरी जो अंतःकरण। निश्चया साचपण। जयाचेनि ॥ १५२॥
जीवु परमात्मा दोन्ही। बैसऊनि ऐक्यासनीं। जयाचिया हृदयभुवनीं। विराजती ॥ १५३॥
ऐसा योगसमृद्धि। होऊनि जो निरवधि। अर्पी मनोबुद्धी। माझ्या ठायीं ॥ १५४॥
आंतु बाहेरि योगु। निर्वाळलेयाहि चांगु। तरी माझा अनुरागु। सप्रेम जया ॥ १५५॥
अर्जुना गा तो भक्तु। तोचि योगी तोचि मुक्तु। तो वल्लभा मी कांतु। ऐसा पढिये ॥ १५६॥
हें ना तो आवडे। मज जीवाचेनि पाडें। हेंही एथ थोकडें। रूप करणें ॥ १५७॥
तरी पढियंतयाची काहाणी। हे भुलीची भारणी। इयें तंव न बोलणीं। परी बोलवी श्रद्धा ॥ १५८॥
म्हणौनि गा आम्हां। वेगां आली उपमा। एऱ्हवीं काय प्रेमा। अनुवादु असे ? ॥ १५९॥
आतां असो हें किरीटी। पैं प्रियाचिया गोष्टी। दुणा थांव उठी। आवडी गा ॥ १६०॥
तयाही वरी विपायें। प्रेमळु संवादिया होये। तिये गोडीसी आहे। कांटाळें मग ? ॥ १६१॥
म्हणौनि गा पंडुसुता। तूंचि प्रियु आणि तूंचि श्रोता। वरी प्रियाची वार्ता। प्रसंगें आली ॥ १६२॥
तरी आतां बोलों। भलें या सुखा मीनलों। ऐसें म्हणतखेंवीं डोलों। लागला देवो ॥ १६३॥
मग म्हणे जाण। तया भक्तांचे लक्षण। जया मी अंतःकरण। बैसों घालीं ॥ १६४॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ १५॥

तरी सिंधूचेनि माजें। जळचरां भय नुपजे। आणि जळचरीं नुबगिजे। समुद्र जैसा ॥ १६५॥
तेवीं उन्मत्तें जगें। जयासि खंती न लगे। आणि जयाचेनि आंगें। न शिणे लोकु ॥ १६६॥
किंबहुना पांडवा। शरीर जैसें अवयवां। तैसा नुबगे जीवां। जीवपणें जो ॥ १६७॥
जगचि देह जाहलें। म्हणौनि प्रियाप्रिय गेलें। हर्षामर्ष ठेले। दुजेनविण ॥ १६८॥
ऐसा द्वंद्वनिर्मुक्तु। भयोद्वेगरहितु। याहीवरी भक्तु। माझ्यां ठायीं ॥ १६९॥
तरी तयाचा गा मज मोहो। काय सांगों तो पढियावो। हें असे जीवें जीवो। माझेनि तो ॥ १७०॥
जो निजानंदें धाला। परिणामु आयुष्या आला। पूर्णते जाहला। वल्लभु जो ॥ १७१॥

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारंभपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १६॥

जयाचिया ठायीं पांडवा। अपेक्षे नाहीं रिगावा। सुखासि चढावा। जयाचें असणें ॥ १७२॥
मोक्ष देऊनि उदार। काशी होय कीर। परी वेचावें लागें शरीर। तिये गांवीं ॥ १७३॥
हिमवंतु दोष खाये। परी जीविताची हानि होये। तैसें शुचित्व नोहे। सज्जनाचें ॥ १७४॥
शुचित्वें शुचि गांग होये। आणि पापतापही जाये। परी तेथें आहे। बुडणें एक ॥ १७५॥
खोलिये पारु नेणिजे। तरी भक्तीं न बुडिजे। रोकडाचि लाहिजे। न मरतां मोक्षु ॥ १७६॥
संताचेनि अंगलगें। पापातें जिणणें गंगे। तेणें संतसंगें। शुचित्व कैसें ॥ १७७॥
म्हणौनि असो जो ऐसा। शुचित्वें तीर्थां कुवासा। जेणें उल्लंघविलें दिशा। मनोमळ ॥ १७८॥
आंतु बाहेरी चोखाळु। सूर्य जैसा निर्मळु। आणि तत्त्वार्थींचा पायाळु। देखणा जो ॥ १७९॥

व्यापक आणि उदास। जैसें कां आकाश। तैसें जयाचें मानस। सर्वत्र गा ॥ १८०॥
संसारव्यथे फिटला। जो नैराश्यें विनटला। व्याधाह्यातोनि सुटला। विहंगु जैसा ॥ १८१॥
तैसा सतत जो सुखें। कोणीही टवंच न देखे। नेणिजे गतायुषें। लज्जा जेवीं ॥ १८२॥
आणि कर्मारंभालागीं। जया अहंकृती नाही आंगीं। जैसें निरिंधन आगी। विझोनि जाय ॥ १८३॥
तैसा उपशमुचि भागा। जयासि आला पैं गा। जो मोक्षाचिया आंगा। लिहिला असे ॥ १८४॥
अर्जुना हा ठावोवरी। जो सोऽहंभावो सरोभरीं। द्वैताच्या पैलतीरीं। निगों सरला ॥ १८५॥
कीं भक्तिसुखालागीं। आपणपेंचि दोही भागीं। वांटूनियां आंगीं। सेवकै बाणी ॥ १८६॥
येरा नाम मी ठेवी। मग भजती वोज बरवी। न भजतया दावी। योगिया जो ॥ १८७॥
तयाचे आम्हां व्यसन। आमुचें तो निजध्यान। किंबहुना समाधान। तो मिळे तैं ॥ १८८॥
तयालागीं मज रूपा येणें। तयाचेनि मज येथें असणें। तया लोण कीजे जीवें प्राणें। ऐसा पढिये ॥ १८९॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥ १७॥

जो आत्मलाभासारिखें। गोमटें कांहींचि न देखे। म्हणौनि भोगविशेखें। हरिखेजेना ॥ १९०॥
आपणचि विश्व जाहला। तरी भेदभावो सहजचि गेला। म्हणौनि द्वेषु ठेला। जया पुरुषा ॥ १९१॥
पैं आपुलें जें साचें। तें कल्पांतींहीं न वचे। हें जाणोनि गताचें। न शोची जो ॥ १९२॥
आणि जयापरौतें कांहीं नाहीं। तें आपणपेंचि आपुल्या ठायीं। जाहला यालागीं जो कांहीं। आकांक्षी ना ॥ १९३॥
वोखटें कां गोमटें। हें कांहींचि तया नुमटे। रात्रिदिवस न घटे। सूर्यासि जेवीं ॥ १९४॥
ऐसा बोधुचि केवळु। जो होवोनि असे निखळु। त्याहीवरी भजनशीळु। माझ्या ठायीं ॥ १९५॥
तरी तया ऐसें दुसरें। आम्हां पढियंतें सोयरें। नाहीं गा साचोकारें। तुझी आण ॥ १९६॥

समः शत्रौ च मित्रे च तथामानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥ १८॥

पार्था जयाचिया ठायीं। वैषम्याची वार्ता नाहीं। रिपुमित्रां दोहीं। सरिसा पाडु ॥ १९७॥
कां घरींचियां उजियेडु करावा। पारखियां आंधारु पाडावा। हें नेणेचि गा पांडवा। दीपु जैसा ॥ १९८॥
जो खांडावया घावो घाली। कां लावणी जयानें केली। दोघां एकचि साउली। वृक्षु दे जैसा ॥ १९९॥
नातरी इक्षुदंडु। पाळितया गोडु। गाळितया कडु। नोहेंचि जेवीं ॥ २००॥
अरिमित्रीं तैसा। अर्जुना जया भावो ऐसा। मानापमानीं सरिसा। होतु जाये ॥ २०१॥
तिहीं ऋतूं समान। जैसें कां गगन। तैसा एकचि मान। शीतोष्णीं जया ॥ २०२॥
दक्षिण उत्तर मारुता। मेरु जैसा पंडुसुता। तैसा सुखदुःखप्राप्तां। मध्यस्थु जो ॥ २०३॥
माधुर्यें चंद्रिका। सरिसी राया रंका। तैसा जो सकळिकां। भूतां समु ॥ २०४॥
आघवियां जगा एक। सेव्य जैसें उदक। तैसें जयातें तिन्ही लोक। आकांक्षिती ॥ २०५॥
जो सबाह्यसंग। सांडोनिया लाग। एकाकीं असे आंग। आंगीं सूनी ॥ २०६॥

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥ १९ ॥

जो निंदेतें नेघे । स्तुति न श्लाघे । आकाशा न लगे । लेपु जैसा ॥ २०७ ॥
तैसें निंदे आणि स्तुति । मानु करूनि एके पांती । विचरे प्राणवृत्ती । जनीं वनीं ॥ २०८ ॥
साच लटिकें दोन्ही । बोलोनि न बोले जाहला मौनी । जो भोगितां उन्मनी । आरायेना ॥ २०९ ॥
जो यथालाभें न तोखे । अलाभें न पारुखे । पाउसेवीण न सुके । समुद्र जैसा ॥ २१० ॥
आणि वायूसि एके ठायीं । बिढार जैसें नाहीं । तैसा न धरीच कहीं । आश्रयो जो ॥ २११ ॥
आघवाची आकाशस्थिति । जेवीं वायूसि नित्य वसती । तेवीं जगचि विश्रांती- । स्थान जया ॥ २१२ ॥
हें विश्वचि माझें घर । ऐसी मती जयाची स्थिर । किंबहुना चराचर । आपण जाहला ॥ २१३ ॥
मग याहीवरी पार्था । माझ्या भजनीं आस्था । तरी तयातें मी माथां । मुकुट करीं ॥ २१४ ॥
उत्तमासि मस्तक । खालविजे हें काय कौतुक । परी मानु करिती तिन्ही लोक । पायवणियां ॥ २१५ ॥
तरी श्रद्धावस्तूसी आदरु । करितां जाणिजे प्रकारु । जरी होय श्रीगुरु । सदाशिवु ॥ २१६ ॥
परी हे असो आतां । महेशातें वानितां । आत्मस्तुति होतां । संचारु असे ॥ २१७ ॥
ययालागीं हें नोहे । म्हणितलें रमानाहें । अर्जुना मी वाहें । शिरीं तयातें ॥ २१८ ॥
जे पुरुषार्थसिद्धि चौथी । घेऊनि आपुलिया हातीं । रिगाला भक्तिपंथीं । जगा देतु ॥ २१९ ॥
कैवल्याचा अधिकारी । मोक्षाची सोडी बांधी करी । कीं जळाचिये परी । तळवटु घे ॥ २२० ॥
म्हणौनि गा नमस्कारूं । तयातें आम्ही माथां मुगुट करूं । तयाची टांच धरूं । हृदयीं आम्हीं ॥ २२१ ॥
तयाचिया गुणांचीं लेणीं । लेववूं अपुलिये वाणी । तयाची कीर्ति श्रवणीं । आम्हीं लेवूं ॥ २२२ ॥
तो पहावा हे डोहळे । म्हणौनि अचक्षूसी मज डोळे । हातींचेनि लीलाकमळें । पुजूं तयातें ॥ २२३ ॥
दोंवरी दोनी । भुजा आलों घेउनि । आलिंगावयालागुनी । तयाचें आंग ॥ २२४ ॥
तया संगाचेनि सुरवाडें । मज विदेहा देह धरणें घडे । किंबहुना आवडे । निरुपमु ॥ २२५ ॥
तेणेंसीं आम्हां मैत्र । एथ कायसें विचित्र ? । परी तयाचें चरित्र । ऐकती जे ॥ २२६ ॥
तेही प्राणापरौते । आवडती हें निरुतें । जे भक्तचरित्रातें । प्रशंसिती ॥ २२७ ॥
जो हा अर्जुना साद्यंत । सांगितला प्रस्तुत । भक्तियोगु समस्त- । योगरूप ॥ २२८ ॥
तया मी प्रीति करी । कां मनीं शिरसा धरीं । येवढी थोरी । जया स्थितीये ॥ २२९ ॥

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव प्रियाः ॥ २० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगोनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२अ ॥

ते हे गोष्टी रम्य । अमृतधारा धर्म्य । करिती प्रतीतिगम्य । आइकोनि जे ॥ २३० ॥
तेसीचि श्रद्धेचेनि आदरें । जयांचे ठायीं विस्तरे । जीवीं जयां थारे । जे अनुष्ठिती ॥ २३१ ॥
परी निरूपली जैसी । तैसीच स्थिति मानसीं । मग सुक्षेत्रीं जैसी । पेरणी केली ॥ २३२ ॥

परी मातें परम करूनि। इयें अर्थीं प्रेम धरूनि। हेंचि सर्वस्व मानूनि। घेती जे पैं ॥ २३३॥
पार्था गा जगीं। तेचि भक्त तेचि योगी। उत्कंठा तयांलागीं। अखंड मज ॥ २३४॥
तें तीर्थ तें क्षेत्र। जगीं तेंचि पवित्र। भक्ति कथेसि मैत्र। जयां पुरुषां ॥ २३५॥
आम्हीं तयांचें करूं ध्यान। ते आमुचें देवतार्चन। ते वांचूनि आन। गोमटें नाहीं ॥ २३६॥
तयांचें आम्हां व्यसन। ते आमुचें निधिनिधान। किंबहुना समाधान। ते मिळती तैं ॥ २३७॥
पैं प्रेमळाची वार्ता। जे अनुवादती पंडुसुता। ते मानूं परमदेवता। आपुली आम्ही ॥ २३८॥
ऐसे निजजनानंदें। तेणें जगदादिकंदें। बोलिलें मुकुंदें। संजयो म्हणे ॥ २३९॥
राया जो निर्मळु। निष्कलंक लोककृपाळु। शरणागतां प्रतिपाळु। शरण्यु जो ॥ २४०॥
पैं सुरसहायशीळु। लोकलालनलीळु। प्रणतप्रतिपाळु। हा खेळु जयाचा ॥ २४१॥
जो धर्मकीर्तिधवलु। आगाध दातृत्वें सरळु। अतुळबळें प्रबळु। बळिबंधनु ॥ २४२॥
जो भक्तजनवत्सळु। प्रेमळजन प्रांजळु। सत्यसेतु सकळु। कलानिधी ॥ २४३॥
तो श्रीकृष्ण वैकुंठींचा। चक्रवर्ती निजांचा। सांगे येरु दैवाचा। आइकतु असे ॥ २४४॥
आतां ययावरी। निरूपिती परी। संजयो म्हणे अवधारीं। धृतराष्ट्रातें ॥ २४५॥
तेचि रसाळ कथा। मऱ्हाठिया प्रतिपथा। आणिजेल आतां। आवधारिजो ॥ २४६॥
ज्ञानदेव म्हणे तुम्ही। संत वोळगावेति आम्ही। हें पढविलों जी स्वामी। निवृत्तिदेवीं ॥ २४७॥
इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां द्वादशोऽध्यायः ॥

Encoded and proofread by
Chhaya Deo, Sharad Deo, and Vishwas Bhide.
Assisted by
Sunder Hattangadi, Ashwini Deo, and Shree Devi Kumar.

Please send corrections to sanskrit@cheerful.com
Last updated October 15, 2005